International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(5): 04-05

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(5): 04-05
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 06-05-2015
Accepted: 09-06-2015

प्रियंका शर्मा
पीएच.डी. शोधार्थी

Correspondence
प्रियंका शर्मा
पीएच.डी. शोधार्थी

अर्थसंग्रह में विधि का स्वरूप

प्रियंका शर्मा

भारतीय दार्शनिक चिन्तन वैदिक काल से प्रारंभ होकर अद्यावधि निरन्तर प्रवाहमान है। भारतीय दर्शन की यही विशेषता रही कि उसके प्रांगण में, आस्तिक–नास्तिक दोनों प्रकार के दर्शनों को स्थान मिला। ''नास्तिको वेदनिन्कः'' से वेद की प्रमाणता को न मानने वाले दर्शनों को 'नास्तिक' कहा गया। इसके विपरीत वेद में आस्था रखने वाले दर्शन 'आस्तिक दर्शन' कहलाये, जिनकी संख्या षड् है। इन दर्शनों में 'मीमांसा दर्शन' का स्थान अन्यतम है। आज भी वेद, ब्राह्मणादि को समझने के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों के ज्ञान हेतु 'मीमांसा' का आश्रय लिया जाता है। जैमिनिप्रणीत 'मीमांसा दर्शन' के पश्चात् अन्य मीमांसा ग्रंथ भी लिखे गये जिनमें लौगाक्षिभास्कर कृत 'अर्थसंग्रह' का विशिष्ट स्थान है, जिसमें जैमिनि प्रणीत मीमांसा–दर्शन के मुख्य प्रतिपाद्यविषयों का निरूपण अत्यंत सारगर्भित शैली में प्रस्तुत किया गया है।

मीमांसा में वेद को अपौरुषेयत्व बताया गया है। मीमांसा के अनुसार वेद में पुरुषानुप्रवेश की संभावना नहीं है। जो लोग वेद में पौरुषेयत्व स्वीकार करते हें, उसका खण्डन मीमांसा ने तर्कादि के माध्यम से किया है। विध्यर्थ के आधार पर वेद के अपौरुषेय होने में प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। इसलिये 'विधि' का सम्यक् व्याख्यान किया गया है। विध्यर्थ के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुये नवीन तार्किक कहते हैं– ''बलवदनिष्ठाननुबन्धित्वकृतिसाध्यत्वविशिष्टेसाध्नत्वरूपं'' परन्तु उदयनाचार्य सदृश सभी प्राचीन नैयायिकों का मानना है कि आप्तों का अभिप्राय ही विध्यर्थ है। उनका आशय है– 'बलवदनिष्ठाननुबन्धिकृतिसाध्यत्वविशिष्टेसाधनताज्ञान' अन्वय और व्यतिरेक से प्रवृत्ति के प्रति साक्षात् कारण है। यद्यपि इस विषय में मत वैभिन्य नहीं है, तथापि आप्ताभिप्राय भी प्रवृत्ति के प्रति परम्पराभाव संबंध से कारण है। यथा– गुरु शिष्य से कहता है कि– हे वत्स! पढ़ो। शिष्य यह सुनकर पढ़ने में प्रवृत्त हो जाता है। पठन कार्य में प्रवृत्त होने में– 'बलवदनिष्ठाननुबन्धि– कृतिसाध्यत्वविशिष्टेसाधनता' इसका कर्त्तव्य है क्योंकि उसके गुरुजन का भी यही अभिप्राय है। इसी अभिप्राय को मीमांसक 'प्रवर्तना' कहते हैं।

भावना सामान्य का लक्षण ''भवितुर्भवनानुकूलो भावयितुर्व्यापारविशेषः''[1] किया गया है, जिसमें 'शाब्दीभावना' एवं 'आर्थीभावना' दोनों का स्वरूप स्पष्ट है। इसी व्रफम में विधि का निरूपण किया गया है। वेद के सभी विभाग विधिमूलक हैं। विधि के अभाव में मन्त्रा, नामधेय एवं अर्थवाद का स्वरूप स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

'विधि' को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'अज्ञात अर्थ के ज्ञापक होने का नाम ही 'विधि' है।'[2] परन्तु अज्ञात ज्ञापन मात्रा से ही विधि पुरुष को यागादि कर्म में प्रवृत्त करने में समर्थ नहीं होती अपितु उस अज्ञात अर्थ को किसी प्रयोजन की भी सिद्धि करनी चाहिये। इसीलिए कहा है – ''प्रमाणान्तरेणाप्राप्ते प्रयोजनवन्तश्चार्य विदधनो विधिः स्वयं प्रयोजनवान् भवतीति।''[3]

'विधि' के चार भेद हैं – उत्पत्तिविधि, विनियोगविधि, अधिकारविधि, प्रयोगविधि।[4] इसके अतिरिक्त 'गुणविधि' तथा 'विशिष्टविधि' के भी दर्शन होते हैं।

गुणविधि – कभी–कभी विधिवाक्यों में द्रव्यमात्रा का विधान रहता है जिससे यज्ञानुष्ठान करना है और कम (धत्वर्थ–यज्ञकर्म) का विधान किसी अन्य वाक्य के द्वारा होता है। यथा– 'दध्ना जुहोति' वाक्य में केवल 'दधि' द्रव्य का उल्लेख है परन्तु मुख्य होम 'अग्निहोत्रां जुहोति' वाक्य द्वारा विहित है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि विधेय का भावना (करण) रूप में एवं उद्देश्य का कर्म रूप में अन्वय होता है। अतः 'दध्ना जुहोति' का वाक्यार्थ बोध 'दध्ना होमं भावयेत्' होता है।

विशिष्टविधि – 'सोमेन यजेत्' से 'विशिष्टविधि को समझा जा सकता है। यहाँ गुण व कर्म दोनों प्रमाणान्तर से प्राप्त नहीं है वहाँ 'विधि द्वारा गुणविशिष्ट कर्म का विधान होता है। सोमेन यजेत् में सोम

(गुण) तथा याग (कर्म) दोनों अप्राप्त है अतः सोमविशिष्ट याग विधान किया गया है। यहाँ 'सोमवता यागेनेष्टं भावयेत्' अर्थात् सोमयुक्त याग से स्वर्ग का सम्पादन करें – यह वाक्यार्थ होगा।

उत्पत्तिविधि – यागादि कर्म के स्वरूपमात्र बोधक विधि को 'उत्पत्तिविधि कहते हैं।[4] यथा – 'अग्निहोत्रां जुहोति' इस वाक्य में अग्निहोत्रा कर्म का करण अर्थात् साधन रूप से अन्वय होता है। जिसका अभिप्राय है – अग्निहोत्र होमेनेष्टं भावयेत्' अर्थात् अग्निहोत्र नामक होम से इष्ट का सम्पादन करें। ध्यातव्य है कि इष्ट के बिना विधिवाक्य, याग में पुरुष का प्रवर्त्तक नहीं हो सकता अतः इष्ट का आक्षेप विधि से होगा।

विनियोगविधि – उत्पत्तिविधि के अनन्तर विनियोगवधि का वर्णन आता है। अर्धीं का प्रधन; अर्धीं होमादिद्ध के साथ सम्बन्धबोधक विधि को 'विनियोगविधि' कहते हैं।[5] द्रव्यदेवताव्रिफया आदि रूप अर्धीं का तत्–तत् वाक्यों द्वारा विधन होता है। जहाँ क्रमों में एक ही प्रधनता है उसका विधयक वाक्य भी एक ही होता है और जहाँ विविध क्रमों का प्राधन्य है वहाँ विधयक वाक्य भी विभिन्न होते हैं। अतः अर्धैं तथा अर्धीं का संबंध प्रतिपादन 'विनियोगविधि' से अभिहित है। यथा– 'दध्ना जुहोति' में दध्ना; तृ.वि.द्ध इस तृतीयाश्रुति से बोधित दधिरूप अर्धैं का 'अग्निहोत्रं जुहोति' इस वाक्य से बोधित अग्निहोत्रा रूप अर्धीं के साथ सम्बन्ध का विधान करता है। अतः 'दध्ना जुहोति' यह विनियोगविधि है और 'दधि' से होम की भावना करें, यह अभिप्राय द्योतित होता है।

विनियोग विधि के सहकारी षट्प्रमाण भी हैं– श्रुति, लिर्धैं, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्या आदि।[6] इनके सहयोग से यह विधि अर्धैंत्व का बोध कराती है। अर्धैंत्व पारार्थ्य का पर्याय है जिसका लक्षण है– 'परोद्देशप्रवृत्तकृतिसाध्यत्वम्' अर्थात् स्वर्गादि पफल के उद्देश्य से प्रवृत्त पुरुष का यत्नव्याप्य ही अर्धैं कहलाता हैं

अधिकार विधि – अनुष्ठेय कर्मों के बाद जिज्ञासा होती है कि इन कर्मों के अनुष्ठान का अधिकारी कौन है? अतः अधिकार विधि द्वारा विशेषतया 'अधिकार' का बोध है। यहाँ अधिकार से आशय 'फल' से है। फल संबंधी विधि ही 'अधिकारविधि' होती है।[7] यथा– 'यजेत् स्वर्गकामः' इस विधिवाक्य से 'यागेन स्वर्गं भावयेत्' यह बोध होता है। यहाँ स्वर्गरूपी फल के श्रवणमात्रा से पुरुष का अधिकार सिद्ध होता है। ''यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽष्टा कपालं निर्वपेत्'' अर्थात् जिस अग्न्याधन करने वाले का घर अग्नि से जल जाए वह क्षाम गुणविशिष्ट अग्नि को अष्टाकपाल पुरोडाश से निर्वपन करे। इस विधि से विदित होता है कि इस प्रकार पुरोडाश निर्वाप करने से अगन्याधन कर चुके हुये व्यक्ति को तथा जिसका घर जल गया है ऐसे व्यक्ति को पापक्षय रूपी फल मिल जाता है। जो पुरुष अधिकार विशिष्ट है वही फल का स्वामी अर्थात् अधिकारी हो सकता है।

प्रयोगविधि – कर्मसम्पादन में शीघ्रता के भाव की ज्ञापकविधि 'प्रयोगविधि' है। यह अर्धैं वाक्यों के साथ एकवाक्यता को प्राप्त प्रधनविधि है।[8] कर्म का क्रम निश्चित होने पर उनके संपादन में शीघ्रता होती है, अन्यथा यह तय करने में 'कि किसे किसके बाद करें?' कार्य में बाध पड़ती है और विलम्ब हो जाता है। इसी से क्रम का बोध कराने से प्रयोग में प्राशु बोधक प्रयोगविधि को कर्मबोधकविधि भी कहा जाता है। 'अर्धीं' के क्रम का बोध कराने वाली विधि प्रयोगविधि है, यह भी; इसकाद्ध लक्षण है।[9]

नियमविधि – जहाँ नाना साधनों से क्रिया की सिद्धि संभव हो उनमें एक साधन के प्राप्त रहने पर दूसरे साधनों की प्राप्ति कराने वाली; प्रापकद्ध विधि 'नियमविधि है।[10] तन्त्रावार्तिककारकुमारिलभट्ट ने इंगित किया है– अत्यंत अप्राप्त पदार्थ का विधान करने वाली विधि 'अपूर्वविधि' होती है।[11] पदार्थ की पाश्चिक अप्राप्ति होने पर उसका विधान करने वाले वाक्य को नियमविधि तथा जहाँ दोनों पदार्थों की एक ही काल में प्राप्ति हो वहाँ दोनों में एक पदार्थ की निवृत्ति कराने वाली विधि को 'परिसंख्या विधि' कहते हैं।

पक्ष में अप्राप्त की प्राप्ति का विधान कराने वाली विधि 'नियमविधि' है। यथा– व्रीहिन अवहन्ति। इस विधिवाक्य से तुषविभोक हेतु अवधत का विधान नहीं है क्योंकि यह अन्वयव्यतिरेक से सिद्ध है अर्थात् ब्रीहि का अवधतादि किए जाने पर तुषविभोक होगा, अन्यथा नहीं होगा। किन्तु नियमविधि होने से अवघात द्वारा ही होगा। अतः नियमविधि में अवघात द्वारा ही तुषविभोक करना चाहिये, यह अभिप्रेतार्थ है।

परिसंख्या विधि – एक समय में दो की प्राप्ति होने पर दूसरे की निवृत्तिपरक विधिवाक्य को 'परिसंख्या विधि' कहते हैं।[12] यथा– प×च–प×च नखा भक्ष्याः। यह वाक्य प×चनख भक्षण का विधान नहीं करता, क्योंकि प×चनख भक्षण में स्वभावतः राग से ही प्राप्त है एवं यह नियम विधि भी नहीं है। क्योंकि एक ही समय में प×च–प×चनखों का भक्षण एवं उनसे भिन्न प×चनखों का भक्षण स्वभावतः प्राप्त होने पर पक्ष में अप्राप्त नहीं है। अतएव प×चप×चनखाः भक्ष्याः यह वाक्य प×च–प×चनख से भिन्न जीवों के भक्षण का निषेधक है अतः परिसंख्या कहा गया है।

अतः उक्त प्रकार से 'विधि' का वर्णन किया गया है, जिसमें भिन्न–भिन्न निमित्त पूर्ति हेतु तत्–तत् संबंधी विधियों का आश्रय लिया जाता है। मीमांसासम्मत विधि विभाग का भी प्रकारान्तर से व्याख्यान 'अर्थसंग्रह' में प्राप्त होता है।

सन्दर्भः

1. अर्थसंग्रह, पृष्ठ 25
2. तत्राज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 48
3. द्रष्टव्य आलोक टीका – (विधि प्रसंग)
4. विध्श्चतुर्विधः–उत्पत्तिविधिः, विनियोगविधिः, अधिकारविधिः, प्रयोगविधिश्च। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 56
5. तत्रा कर्मस्वरूपमात्राबोधको विध्रिुत्पत्तिविधि। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 56
6. अर्धैंप्रधनसंबन्धबोध्को विधिविनियोगविधिः। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 61
7. एतस्यविधेः सहकारिभूतानि षट्प्रमाणानि। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 64
8. कर्मजन्यपफलस्वाम्यबोधको विध्रिध्कारविधिः। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 138
9. प्रयोगप्राशुभावबोधको विधिः प्रयोगविधिः। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 115
10. अर्धीनां कर्मबोध्को विधिः प्रयोगविधिरित्यपि लक्षणम्। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 115.
11. नानासाधनसाध्यव्रिफयायामेकसाधनप्राप्तावप्राप्तस्थापरसाध्नस्य प्रापको विधिर्नियमविधिः। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 146
12. तन्त्रावार्तिक–1/2/34
13. उभयोश्च युगपत्प्राप्तावितख्यावृत्तिपरो विधिः परिसंख्या विधिः। अर्थसंग्रह, पृष्ठ 148